Multidisciplinary, Multi-Lingual, Peer Reviewed /Refereed Open Access Journal
Vol. 3, Issue 3, July-September, 2025
Available online : https://www.biharshodhsamaagam.com/
ISSN : 3048-6971

प्रेम और विरह की अन्यतम रससिक्त कृति बीसलदेव रासो

डॉ० प्रदीप
कुमार सहायक प्राध्यापक, हिंदी विभाग
डी०ए-वी० कॉलेज, कानपुर

सारांश:- बीसलदेव रासो प्रेम और विरह की अन्यतम भावप्रवण रससिक्त कृति है। यह कोमल प्रेम व विप्रलंभ श्रृंगार के मधुर, मार्मिक व संवेदनशील रूप का अमर चित्र प्रस्तुत करती है। प्रणय संवेदना के वियोगपक्ष का द्रवणशील रूप यहाँ वर्णित है।बीसलदेव रासो में वर्णित विरहवर्णन, नारी चेतना,संयोगकालीन मनोरम दृश्यों के प्रभाव से विरह की तीव्रता, बारहमासा वर्णन पद्धति, प्रकृति का उद्दीपन रूप में वर्णन, शास्त्रीय विधानों का किंचित अंशों में समावेश इत्यादि सभी विशेषताएँ मिलकर इस रासो काव्य को प्रेम और विरह की अमरकृति के रूप में स्थापित करती हैं।

बीजशब्द:- वृत्तसंग्राहक, प्रामाणिक पाठ, कल्पना-प्रसूत, बारहमासा,षड्ऋतु वर्णन, संदेशकाव्य, सामंती जीवन, विरहकाव्य, गीतिकाव्य, ऊलगचाकर, नायिका-प्रधान ग्रंथ, गीति-प्रबंध, अतिरंजनापूर्ण काव्यशैली, प्रोषितपतिका, बहुरूपकनिबद्ध परंपरा, अल्पनिरूपकबद्ध परंपरा, आधुनिक चेतना, आर्थिक स्वतंत्रता, स्त्रीचेतना, पुरुष-प्रधान समाज, स्त्री स्वातंत्र्य, धर्मप्राण, कला चेतना, चरितकाव्य कालजयी कृति।

शोध-विस्तार :- आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के अंतर्गत 'बीसलदेव रासो' को आदिकाल की बारह प्रामाणिक रचनाओं की सूची में रखा है। वे इन बारह ग्रंथों को दो भागों में बाँटते हैं- I) साहित्यिक पुस्तकें ii) देश-काल काव्य की पुस्तकें। वे देशकाल काव्य की आठ पुस्तकों में क्रम संख्या ०२ पर बीसलदेव रासो का स्थान सुनिश्चित करते हैं। 'वीरगाथाकाल' नामकरण का औचित्य सिद्ध करते हुए आचार्य शुक्ल बीसलदेव रासो को वीरगाथात्मक ग्रंथ नहीं मानते हैं।वे लिखते हैं कि- **" इन्हीं बारह पुस्तकों की दृष्टि से 'आदिकाल' का लक्षणनिरूपण और नामकरण हो सकता है। इनमें से अंतिम दो तथा बीसलदेव रासो को छोड़कर शेष सब ग्रंथ वीरगाथात्मक ही हैं। अतः आदिकाल का नाम वीरगाथाकाल ही रखा जा सकता है ।** " 1 बीसलदेव रासो का रचनाकाल भी अत्यंत विवादास्पद विषय रहा है।कवि नरपति नाल्ह ने ग्रंथारंभ में रचनाकाल विषयक निम्न उद्धरण रखा है-

बारह है बहोत्तराहां मंझारि, जेठ वदी नवमी बुधवारि।
नाल्ह रसायण आरम्भई, सारदा तूठी ब्रहमकुमारि।
कासमीरां मुख मण्डनी, रास प्रसांगो बीसलदेराइ।

विभिन्न पाठकर्ताओं व वृत्तसंग्राहकों द्वारा बीसलदेव रासो का रचनाकाल 1272 वि० से लेकर सोलहवीं शताब्दी के बीच स्वीकार किया जाता है। उपर्युक्त पंक्ति से इसका रचना वर्ष 1272 वि० भासित होता है। रासो में वर्णित राजाओं का ऐतिहासिक विवरण दृष्टिगत रखते हुए शुक्ल जी विग्रहराज चतुर्थ को बीसलदेव मानते हैं।इस आधार पर इसका रचनावर्ष 1212 वि० मानते हैं। जिससे आचार्य द्विवेदी जी भी सहमत दिखाई पड़ते हैं।वे ' बारह सै बहोत्तराहां ' का पाठग्रहण वि० संवत् 1212 के पक्ष में करते हैं।बीसलदेव रासो की विभिन्न प्रतियों में इसके रचनावर्ष की विभिन्न तिथियाँ अंकित हैं- 1073,1076,1212,1272,1373 विक्रमी आदि।बच्चन सिंह ने 'हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास ' में लिखा है कि नाल्ह विग्रहराज चतुर्थ का नहीं, तृतीय का समकालीन था। वे 1116 ई० में वर्तमान भोजराज के उत्तराधिकारी की 1116ई० के आसपास विग्रह राज तृतीय द्वारा की गई सैन्य सहायता का विवरण स्वीकार करते हैं । वे इसका आधार बाँसवाड़ा, उज्जैन और बेतवा के दानपत्र और शिलालेख को बनाते हैं। इन दानपत्रों व शिलालेखों के आधार पर भोजराज का समय 1076 से 1115वि० मान्य हो सकता है। यह स्थिति विग्रहराज तृतीय से भोजराज की बेटी के राजमती से विवाहविषयक तथ्य को भी प्रामाणिकता प्रदान करती है। इस प्रकार आचार्य शुक्ल संवत् 1212 डॉ० नगेंद्र द्वारा संपादित इतिहास में 1016ई० ,व बच्चन सिंह द्वारा 1076वि० मान्य है। डॉ० नगेंद्र के ग्रंथ में डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित रास की एक पंक्ति को आधार बनाया गया है- "संवत् सहस तिहत्तर जानि, नाल्ह कवी सरसीय वाणि।" डॉ० मोतीलाल मेनारिया इसे सोलहवीं शताब्दी में नरपति नामक एक जैन गुजराती कवि की रचना स्वीकार करते हैं। परंतु यह अनुमान मात्र है। रचना को ही

आधार बनाकर विश्लेषण प्रस्तुत किया जाय तो कहा जा सकता है कि भाव और भाषा की दृष्टि से यह रचना जैनकवि की नहीं हो सकती है। अतः बीसलदेव रासो का रचनावर्ष 1016 ई० , इसके साथ ही कवि नरपति नाल्ह द्वारा रचित बीसलदेव रासो की डॉ० माताप्रसाद गुप्त द्वारा संपादित 128छंदों की रचना को इसका प्रामाणिक पाठ स्वीकार किया जाता है। बीसलदेव रासो में कुल चार खंड हैं।यह यह काव्य लगभग 2000 चरणों में समाप्त होता है-

खंड-1 मालवा के राजा भोज परमार की पुत्री राजमती से सांभर नरेश बीसलदेव का विवाह।

खंड-2 बीसलदेव रासो का राजमती से रूठकर उड़ीसा प्रस्थान तथा एक वर्ष प्रवास।

खंड-3 राजमती का विरहवर्णन तथा बीसलदेव का पुनरागमन।

खंड-4 राजा भोज द्वारा पुत्री राजमती को मायके ले जाना बीसलदेव द्वारा विदाई कराकर चित्तौड़ वापस लाना।

बीसलदेव रासो मूलतः लोक गेयकाव्य है। हालांकि डॉ० मोतीलाल मेनारिया ने बीसलदेव रासो के गेयरूप संदर्भित तथ्य को अमान्य किया है।उनका मत है कि राजस्थान के लोकजीवन में यह काव्य कभी गेय नहीं रहा है।वस्तुतः डॉ० मेनारिया इसका आशय लोकगीत रूप से ले रहे हैं। वे बीसलदेव रासो को लोकगीत नहीं मानते हैं। परंतु रासो को गेय मानने का आशय यह है कि यह मूलतः गेयशैली में लिखित है। वस्तुतः रासो की रचना व वर्ण्यवस्तु को देखकर स्पष्ट पता चलता है कि कवि नाल्ह बीसलदेव (विग्रहराज) के जीवंत संपर्क में रहा होगा। यह रचना घटनात्मक न होकर वर्णनात्मक है, जिसमें दो घटनाएँ प्रधानतः वर्णित हैं- बीसलदेव का विवाह व उड़ीसा गमन। घटनाओं के साहित्यिक विवरण काव्यात्मक रसास्वाद से आपूरित है। हालांकि वर्णित घटनाओं की ऐतिहासिक पड़ताल से कतिपय विवरण कल्पना-प्रसूत होते हैं। ऐतिहासिकता के संदर्भ में सबसे बड़ा भ्रम अजमेर के चौहान राजा विग्रहराज चतुर्थ व तृतीय के बीच है। आचार्य शुक्ल बीसलदेव को विग्रहराज चतुर्थ के रूप में स्वीकार करते हैं। वे मानते हैं कि संस्कृत में राजकवि सोमदेव द्वारा रचित 'ललितविग्रहराज नाटक' में उल्लिखित विग्रहराज के वीरतापूर्ण कृत्यों का विवरण शिलालेखों तथा राजपूताना म्यूजियम में सुरक्षित है।बीसलदेव को विग्रहराज चतुर्थ मानने पर संशय दो बिंदुओं पर होता है- प्रथम, विग्रहराज चतुर्थ से 100वर्ष पूर्व धार के प्रसिद्ध राजा भोज परमार का देहांत हो चुका था। इस स्थिति में उनकी पुत्री राजमती से विग्रहराज चतुर्थ का विवाह असंभव प्रतीत होता है, द्वितीय कारण यह है कि विग्रहराज चतुर्थ की वीरतापूर्ण चढ़ाइयों में दिल्ली और हाँसी के प्रदेशों की विजय शामिल हैं। इस स्थिति में बीसलदेव रासो में विग्रहराज चतुर्थ के वीर कृतित्व का अभाव ऐतिहासिक तथ्यों को असंगत सिद्ध करता है। बच्चन सिंह के अनुसार नाल्ह को विग्रहराज तृतीय का समकालीन माना जा सकता है। 1116 वि० के आसपास भोजराज का उत्तराधिकारी धार में विद्यमान था। विग्रहराज तृतीय ने सेना भेजकर भोजराज की सहायता की है।इस स्थिति में भोजराज की पुत्री राजमती का विवाह विग्रहराज तृतीय से संभाव्य है। वस्तुतः विग्रहराज तृतीय का ही बीसलदेव के रूप में ग्रहण डॉ० नगेंद्र प्रभृति आलोचकों को इतिहाससम्मत प्रतीत होता है।

'बीसलदेव रासो' को आदिकाल की श्रेष्ठ भाव-विह्वल कृति के रूप में स्वीकार किया जाता है। इसमें सामंती जीवन के प्रति अरुचि तथा लोकजीवन के प्रति भावनिष्ठ संपृक्ति दिखाई पड़ती है। नारी गरिमा की स्थापना प्रकृति के रमणीय भावचित्र, बारहमासा तथा ऋतुवर्णन में प्राकृतिक संसर्ग तथा विरह की विभिन्न दशाएँ इसे अत्यंत रसप्लावित रचना के रूप में प्रस्तुत करती हैं। इसमें संदेशकाव्य की परंपरा का निर्वहन भी भी हुआ है-**" सामंती जीवन के प्रति गहरी अरुचि का सजीव चित्र इस काव्य में मिलता है। 'संदेशरासक' के समान ही 'बीसलदेव रासो' की भावभूमि प्रेम की निश्छल अभिव्यक्ति से सरस है। 'मेघदूत' और ' संदेशरासक' की संदेश परंपरा भी इसमें मिलती है। राजमती एक पंडित के द्वारा अपने पति के पास संदेश भेजती है।"2**

बीसलदेव रासो हिंदी का गौरव ग्रंथ है।उसकी इस गौरवकीर्ति का प्रधान कारण परंपरा में निहित होने पर भी बीसलदेव रासो में आई कतिपय महत्वपूर्ण मौलिक विशेषताएँ इसे हिंदी साहित्य की निराली रचना सिद्ध करती है।

बीसलदेव रासो यद्यपि रास परंपरा का ग्रंथ है।यह समृद्ध काव्यपरंपरा रही है। इसमें जैन-मुनियों व अपभ्रंश की रचनाएँ तथा वीरगाथा रास रचनाएँ समाहित हैं। इन सभी रासग्रंथों में बीसलदेव रासो का विशेष स्थान है। वीरगाथा रासो ग्रंथों में जहाँ वीरता व लड़ाई आमबात है और उसका कारण सुंदरी कन्या का अपहरण है। वहीं बीसलदेव रासो में एक भी युद्ध नहीं हुआ है।उसकी नायिका राजमती माता-पिता की सहमति से विवाह करके आती है।

वीरगाथा रासो साहित्य में इन्हीं युद्धों व लड़ाइयों के कारण श्रृंगार व वीर रस एक-दूसरे के पोषक के रूप में सामने

आते हैं। परंतु बीसलदेव रासो में श्रृंगार पृथक व स्वतंत्र रूप में वर्णित है। वीरगाथात्मक ग्रंथों में युद्ध,युद्धोन्माद ,सैन्य-सज्जा,सैन्य-प्रयाण व चरितनायकों का योद्धा रूप वर्णित है। इसके विपरीत बीसलदेव रासो में न तो युद्ध है न युद्धोन्माद। यहाँ पर बीसलदेव का श्रेष्ठ योद्धारूप वर्ण्यवस्तु के रूप में ग्रहण नहीं किया गया है।

रासो साहित्य में राजाओं की अतिशयोक्तिपूर्ण प्रशंसा मुख्य विषय रहा है।बीसलदेव को कवि ने मूर्ख ऊलगचाकर के रूप में वर्णित करके विसराहना की है। उस युग में यह वर्णन नरपति कवि के साहस को प्रमाणित करके उनका एक विशिष्ट स्थान निर्धारित करता है।सभी राजे सेना लेकर विजय के लिए प्रयाण करते हैं तो बीसलदेव ऊलगचाकरी हेतु प्रयाण करता है-**"पर नाल्ह के इस बीसलदेव रासो में जैसा कि होना चाहिए था, न तो उक्त वीर राजा की ऐतिहासिक चढ़ाइयों का वर्णन है, न उसके शौर्य- पराक्रम का। श्रृंगार रस की दृष्टि से विवाह और रूठकर विदेश जाने का (प्रोषितपतिका के वर्णन के लिए) मनमाना वर्णन है।अतः:इस छोटी-सी पुस्तक को बीसलदेव ऐसे वीर का 'रासो' कहना खटकता है।"3**

बीसलदेव रासो का वर्ण्यविषय सामंती जीवन, राजपरिवार तथा राजा-रानी का परिचय है।यह कहानी साधारण जनता के जीवन के अधिक निकट लाकर कौशलपूर्वक वर्णित की गई है। जिसमें रानी राजमती के जीवन से जाटनी व अरण्यरोझ के रूप में जीवन प्राप्त करने की कामना व्यक्त करती है।

रासो साहित्य में जहाँ नायक-नायिका को उसकी वस्तुस्थिति से बढ़ा-चढ़ाकर अतिरंजनापूर्ण शैली में वर्णित किया गया है। वहीं कवि ने बीसलदेव के ऐश्वर्य, साम्राज्य रूप को देवत्वोपम करके नहीं दिखाया है। जबकि इसके विपरीत आदिकाल में मनुष्य को ईश्वरीय व अलौकिक रूप में चित्रण की प्रवृत्ति रही है।

बीसलदेव रासो एक नायिकाप्रधान ग्रंथ है। वहीं अन्य रासो ग्रंथ नायक प्रधान या फिर घटनाप्रधान हैं। उनके लिए नायिका स्त्रीदेह या सजावट की वस्तु मात्र है। इसके विपरीत बीसलदेव रासो में संपूर्ण कथावस्तु व विरहवर्णन प्रसंग पूर्णतया नायिका केन्द्रित हैं।

यद्यपि प्राचीनकाल से ही रासो साहित्य में विवाह के समय माता-पिता द्वारा दी जाने वाली वस्तुओं का दहेज रूप में वर्णन मिलता है।बीसलदेव रासो में भी वर्णित दहेजवर्णन हिंदी साहित्य का प्रथम नहीं तो प्रारंभिक वर्णनों में से अवश्य है।यह तथ्य भी बीसलदेव रासो को एक विशिष्ट रचना के रूप में स्थापित करता है।

बीसलदेव रासो एक गीतिप्रबंध है । इस दृष्टि से इसमें 128 छंदों में कथा का भलीभाँति निर्वहन पाया जाता है। यद्यपि संगीततत्व रासो परंपरा के अन्य ग्रंथों में भी पाया जाता है। परमाल रासो के आधार पर तो आल्हा नामक लोकगीत ही प्रचलित हो गया है।इस बिंदु पर परीक्षण करने पर पता चलता है कि बीसलदेव रासो की संगीतमयता शास्त्रीय संगीत के निकट है, इसके पहले ही छंद में राग केदार को बद्ध कर उसका निर्देश कर दिया गया है।

रासो परंपरा के अधिकांश ग्रंथ जहाँ संर्गों में विभक्त हैं । वहीं बीसलदेव रासो में सर्गविभाजन का अभाव परंपरा से पृथक रास के वैशिष्ट्य का आधायक हैं।

छंद की दृष्टि से रासो परंपरा की रचनाएँ बहुरूपकनिबद्ध परंपरा व अल्पनिरूपकबद्ध परंपरा में समाहित हो जाती हैं। वहीं बीसलदेव रासो में छंदवैविध्य नहीं है।पूरी रचना एक ही राग में गाए जाने वाले छंद में है, इसलिए यह अल्पनिरूपकबद्ध परंपरा में आती है । अल्पनिरूपकबद्ध परंपरा में आने वाली जैन साहित्य की सभी रचनाएँ साहित्यिक दृष्टि से हीन हैं वहीं बीसलदेव रासो साहित्यिक दृष्टि से भी वरेण्य कृति है।रासो में अपभ्रंश का भाषिक वैशिष्ट्य भी सुरक्षित दिखाई पड़ता है। इसके साथ ही आधुनिक आर्यभाषा के लक्षण परसर्गों का उदय भी रास में दिखाई पड़ता है- **" बीसलदेव रासो में परसर्ग -रूप हैं- गउरिका नंदन, फंदा पाट का , बारह की काणि, जमाई नूं, तिण सूँ, हिमालइ मांहिं गिलउ, परदल को। " 4**

बीसलदेव रासो में स्त्री की आधुनिक चेतना राजमती के माध्यम से आई है।वह अपने पति की हाँ में हाँ न मिलाकर उसकी हीनता बताना, सांभर के खानों के ज़वाब में चाँदी के खानों का प्रमाण देना, ऊलगचाकरी को गए पति को मूर्ख कहना, इत्यादि लक्षण आधुनिक नारी की चेतना के परिचायक हैं। वहीं कवि नरपति नाल्ह की भी चेतना में यह आधुनिक बिंदु परिलक्षित होता है कि जिसमें वह सामंती स्त्री की दुर्दशा का मूल कारण आर्थिक पराधीनता मानते हैं। जहाँ जाट-जाटिनियाँ खेतों में काम करके अर्थोपार्जन में बराबर की सहभागी हैं।वे आर्थिक स्वतंत्रता के कारण पुरुषों के बराबर ही अधिकार तथा सम्मान अपने वर्ग में प्राप्त करती है-

1- **अस्त्रीय जनम काइ दीधउ महेस**
अवर जन्म थारइ घणा रे नरेश
घणह न सिरजीव धउलीय गाइ
बनखंड काली कोइली
हउं बइसती अंबा नइ चंपा की डाल
भषती दाष बिजोरडी।
2- **आँजणी काइं न सिर जीण करतार**
सेत कमावती स्यउं भरतार
पहिरण आछी लोवणी
तुंग तुरीय जिमि भींड़ती गात
हँसि-हँसि बूझती प्रिय की बात।

बीसलदेव रासो प्रशस्तिगान परंपरा का रासो ग्रंथ मात्र नहीं है।वह विरह के मधुर-मार्मिक और संवेदनशील रूप का अमरचित्र, तरल-सूक्ष्म अनुभूतियाँ, नारी हृदय की असहायता, व विवशता-वेदना का चित्रण करते हुए कोमल मानवीय संवेदना का अमर आख्यान रचता है। ग्रंथारंभ में ही कवि की संवेदनशीलता का मार्मिक दृष्टांत है। राजा भोजराज के राजदरबार में रानी कहती हैं। हे राजा! जीवन के अंतिम दिन शेष रहते ही उपयुक्त वर देखकर राजकुमारी का विवाह कर दीजिए। भारतीय समाज में कन्या का विवाह माता-पिता के लिए जीवन- गति का विशिष्ट पड़ाव है। उच्च या निम्नवर्गीय सभी माता- पिता की आकांक्षा होती है कि वह संतान के लिए घर-वर तथा सुख-सुविधा का प्रबंध कर जाय। राजा-प्रजा,अमीर-गरीब सबकी यही अभिलाषा है। नरपति कवि के अनुसार राजा को राजकुमारी के लिए नागर-चतुर व सुजान, स्वर्ग के देवताओं को भी मोहित करनेवाले वर की तलाश है। तलवारों की झंकार व कन्याओं के बलात् अपहरण के दौर में नरपति कवि की संवेदनशील दृष्टि ही यह सृजन कर सकती है। भारतीय समाज की जातीय व वर्गीय श्रेष्ठता की आकांक्षा अपने से उच्च कुल में संबंधस्थापन के अहं का रूप ले लेती है । चौहान कुल में परमारवंशीय कन्या के आगमन से उत्पन्न खुशी के निरूपण में भी कवि का अभीष्ट यही व्यंग्यार्थ है।

अपने यहाँ वररूप में आये अतिथि का सम्मान भी दृष्टव्य हैं। इस काव्य में भारतीय समाज की 'अतिथि देवो भव' की मान्यता का साकार निरूपण हुआ है। भारतीय समाज का निम्नवर्ग भी वर को राजाधिराज के रूप में देखता है।इस संवेदनशील तथ्य की मार्मिक पहचान करते हुए कवि ने द्वारचार के वर्णन में वर-कन्या युगल को साक्षात रुक्मणी-कृष्ण युगल के रूप में निरूपित किया है।इस हर्षातिरेक में सारी संपदा दायज के रूप में लुटा देने की इच्छा होती है। भोजराज व उसकी पत्नियों द्वारा दहेजदान का वर्णन आज की विवाह मंडप दृश्यावली को साकार करता है। विवाहोत्सव का आमोद-प्रमोद राजपरिवार तक ही सीमित न होकर राजा -प्रजा के वैषम्य को मिटाकर लोकसंवेदना के धरातल पर समान रूप में प्रस्तुत कर देता है। बच्चन सिंह ने ऐतिहासिक विकास की प्रक्रिया में रासो में वर्णित लोकसंवेदना को जनजीवन पर पड़े ह्रास कारक प्रभाव के रूप में विश्लेषित किया है-**" गार्हस्थ्य जीवन का उतार-चढ़ाव,शकुन-अपशकुन, बारहमासा, मुहूर्त विचार, तंत्र -मंत्र आदि से रासो भरा पड़ा है। योगियों की उस विद्या का भी इसमें उल्लेख है जिसके द्वारा वह पल-क्षण में हजारों कोस दूर जा सकता है।यह सब लोकजीवन से ही लिया गया है।पर इनके आधार पर नाल्ह जनकवि नहीं हो जाता।यह सब जनजीवन के ह्रासोन्मुखी तत्व हैं ।इनका फल आज भी देश भुगत रहा है।" 5**

उत्साह के अतिरेक में व्यक्ति स्व के अहं को भी व्यक्त कर देता है। परमार कन्या से विवाह के हर्षातिरेक में बीसलदेव अपनी सांभरखान का बखान आरंभ कर देता है।इस अतिरेक से उपजी भावप्रवणता में तनिक भी बाधा अत्यंत क्षोभ पैदा करती है। राजमती की विसराहनापूर्ण उक्ति उड़ीसाधिपति की प्रशंसा से उपजा राजा बीसलदेव का क्षोभ मानवीय मनोभावों के अंतस्तल तक की पैठ का विरल उदाहरण है।

पति-पत्नी का दांपत्य संबंध अत्यंत नाज़ुक होता है। उसमें किसी भी परपुरुष या परस्त्री का ज़िक्रमात्र भी संबंध के बीच पर्याप्त शून्य छोड़ जाता है।राजमती से उड़ीसाधिपति की प्रशंसा सुनकर राजा को राजमती के चरित्र पर संदेह होता है।इसी आशंका के कारण वह राजमती से रहस्य को पूर्णतः प्रकट करने के लिए कहता है।

धर्मप्राण भारतीय समाज पशु-पक्षी ही नहीं अचेतन प्राणी पहाड़ व नदी के प्रति भी पूज्यभाव रखता है।इसी मार्मिक संवेदना के कारण नरपति कवि भी हरिणी द्वारा जगन्नाथ की पूजा व एकादशी व्रत धारण का उल्लेख करता है।

भारतीय पुरुष-प्रधान समाज स्त्री द्वारा दर्पदलन या अहं पर होनेवाली चोट को सहन नहीं कर पाता है। इसीलिए बीसलदेव घर, राजपाट छोड़कर उड़ीसा जा रहा है। राजमती के साथ चलने अथवा रोकने के सभी प्रयास व्यर्थ सिद्ध होते हैं।बीसलदेव द्वारा इस तरह घर छोड़ने पर सग-स्नेहियों के संभावित प्रश्नों की आशंका से राजमती अत्यंत व्याकुल हो उठती है।

भारतीय समाज में पतिगमन के समय त्रियाचरित्र के आरोप को भी कवि भाँप लेता है। भारतीय समाज की ज्योतिष पर अटल आस्था का प्रमाण प्रवासगमन के समय शुभ मुहूर्त देखने पर प्रकट होता है। राजमती के मन में प्रिय की कुशलक्षेम का भाव भी इसी शकुन विचार प्रसंग से प्रकट होता है।बीसलदेव के राजा होने के बावजूद राजमती प्रयाण के समय राजकीय चलन की शिक्षा व सेवक तथा बाँदी के साथ हँसने विषयक वर्जनाओं का भी निर्देशन कर देती है। भारतीय स्त्री के लिए सारे आमोद-प्रमोद पति के साहचर्य में ही संभव हैं। इसलिए पतिप्रवास के बाद राजभवन की सारी प्रसन्नता, बेकली, भूख-प्यास का त्याग व राजभवन के श्मशानवत हो जाने के वर्णन में परिलक्षित होती है।

प्रियवियोग की अवस्था भारतीय स्त्री के विषाद व दुख की दारुण अवस्था है।प्रोषितपतिका राजमती को प्रतीक्षारत अवस्था में तनिक भी आहट मास की बीतती अवधि में पति के आगमन का आभास प्रतीत होने लगता है।उस समय के समाज में भी लंपट पुरुषों की कमी नहीं थी । इसीलिए छत पर राजमती द्वारा घूमते समय सास यह कहकर सचेत करती है कि बिल्ली से छींका व पवन से दीपक बच नहीं सकता है।

नरपति नाल्ह ने निम्नवर्गीय समाज की मानवीय संवेदना व स्त्री संवेदना को परस्पर संयुक्त कर दिया है। राजमती जाटनी रूप में जन्म लेकर अर्थोपार्जन करती हुई व पति साहचर्य का लाभ प्राप्त करना चाहती है।सामंतकुलीन स्त्रियों की पराधीनता से ऊबकर वह कोयल, जाटनी व रोझणी बनकर स्त्री स्वाधीनता का वरण करना चाहती है।

यह भारतीय धर्मप्राण व्यक्तित्व की आस्था है , जिसमें संदेश के लिए निकले पंडित की संवेदना राजमती की संवेदना से जुड़ जाती है।उस युग में भी पत्र ही प्रवासी स्वजनों के संदेश व्यापार का माध्यम हुआ करते थे। राजा की चिट्ठी भी विरहिणी राजमती को प्रफुल्लित कर देती है।राजा की नगरवापसी पर प्रजा का उछाह, शय्या पर दीर्घकाल के पश्चात मिलने जा रही राजमती, मिलन की खुशी में हल्का रोष, प्रेमालाप में हल्का उलाहना,अंगों का अंग के पास ले जाकर कुशल नायिका की भाँति हल्का मोड़ लेना ये विविध भावव्यापार नरपति कवि की दृष्टि से मनोरम बन पड़े हैं।

बीसलदेव रासो की नायिका राजमती एक सशक्त नारी चरित्र है।पति का ऊलगचाकरी गमन उसके कथन से रुष्ट होने के कारण है। वस्तुतः बीसलदेव का ऊलगचाकरी गमन राजमती के कथन से अधिक राजा के अविवेक के कारण हुआ था। इसलिए राजमती बीसलदेव के अविवेक पर क्रुद्ध है।वह अपने कथन पर झंखती नहीं है। विरहवर्णन में सृजित नारी राजमती का सशक्त चरित्र आधुनिक नारियों की चेतना को भी संबल प्रदान कर सकता है। डॉ० मैनेजर पाण्डेय ने समकालीनता और शाश्वत मूल्यों की स्थापना में ही किसी कालजयी कृति की रचनात्मकता स्वीकार की है-" **जो कृति किस सीमा तक परवर्ती पीढ़ियों और युगों की मूल्यदृष्टि और कलाचेतना को संतुष्ट कर पाती है वह उस सीमा तक सार्थक बनी रहती है। x x x x x गहरे स्तर पर समकालीन होकर, समकालीन जीवन से संबद्ध होकर ही कृति सार्वजनिक बनती है, न कि परंपरा और परिवेश से विच्छिन्न होकर।" 6**

शास्त्रीय दृष्टिकोण से बीसलदेव रासो के विरहवर्णन का मूल्यांकन करें विप्रलंभ श्रृंगार के चार भेदों में से पूर्वराग,मान,प्रवास,करुण में से बीसलदेव के गमनजनित

प्रवास विप्रलंभ का वर्णन मिलता है।अब इस प्रवास विप्रलंभ से उत्पन्न विरह की दस दशाओं में से सर्वप्रथम व्याधि व जड़ता दशा के लक्षणों यथा नाड़ी में जीवन का न होना, वस्त्र संभालने की सुध-बुध भी को बैठना , दाँतों का बैठ जाना आदि वर्णित है। आगे के वर्णन में स्मृति,गुणकथन, प्रलाप,उद्वेग, दशाएँ भी सहज रूप में राजमती के विरह में दृष्टव्य हैं।इस प्रकार विप्रलंभ श्रृंगार की सभी दशाएँ राजमती के वियोग में दिखाई पड़ती हैं। श्रृंगार के संयोग के क्षणों की मधुर स्मृतियाँ विरहदुख को तीव्र करने में सहायक होती हैं।संयोगकालीन मनोरम प्रसंगों की मादकता विरह को उभारती है।दुख की रजनी में बीत चुका सुखमय प्रभात हृदय को कचोटता है।रास में भी नरपति कवि ने संयोग के बीते क्षणों की याद

दिलाकर विरह व्यथा को अत्यंत संतापकारी बना डाला है। क्योंकि मिले हुए को खोना ही संतापकर है जो मिला ही नहीं वह संतापकर होकर हृदय में क्यों आएगा? आचार्य शुक्ल नागमती के वियोग वर्णन का विवेचन करते हुए भी यह तथ्य पुष्ट करते हैंकि-**" प्रेम में सुख और दु:ख दोनों की अनुभूति की मात्रा जिस प्रकार बढ़ जाती है उसी प्रकार अनुभूति के विषयों का विस्तार भी।संयोग की अवस्था में जो प्रेम सृष्टि की सब वस्तुओं से आनंद का संग्रह करता है वहीं वियोग की दशा में सब वस्तुओं में दु:खसंग्रह करने लगता है।"7**

नरपति कवि ने राजमती का विरहवर्णन प्रकृति के उद्दीपन कारी प्रभाव के रूप में किया है।इस प्रकृति वर्णन में कवि का ध्यान प्रकृति वर्णन पर ही सीमित न रहकर विरहव्यथा को भी अत्यंत सजीवता प्रदान करता है।नागमती के विरहवर्णन व सूर की गोपियों के विरहवर्णन की भाँति प्रकृति विरहिणी से संयुक्त हो जाती है।विरह में कोयल नागमती के साथ रोती है तथा गेहूँ का हृदय फट जाता है, विरह में गोपियों को कालिंदी कारी कारी प्रतीत होती हैं। मेघदूत में भी मेघ मध्यभारत की प्रकृति के साथ एकाकार हो उठा है-**" नर्मदा नदी हाथी के शरीर पर चित्रित भक्ति रचना की रेखाएँ- जिसे पढ़कर मालूम होता है कि कवि का मन कलात्मक-बोध की ओर प्रवृत्त है।इसी प्रकार बादल का संयोग प्राप्त होने पर चर्मण्वती नदी का वर्णन कुछ अन्य प्रकार से करता है।चंबल की पतली धारा पृथ्वी के गले में मोतियों के माला की एकावली हार है और वहाँ जब तुम (बादल) जल पीने के लिए उतरोगे तब तुम्हारी शोभा उस हार के मध्य इंद्रनीलमणि के समान हो जाएगी।उस शोभा से हार और तुम(बादल) दोनों चमत्कृत हो जाओगे।।" 8**

महाकवि सूरदास ने भी गोपियों का वियोगवर्णन मनुष्य मन से निकालकर प्रकृति के अछोर विस्तार में समाहित कर दिया है-**" सूरदास जी का विहार -स्थल जिस प्रकार घर की चहारदीवारी के भीतर तक ही न रहकर यमुना के हरे-भरे कछारों , करील के कुंजों और वनस्थलियों तक फैला है, उसी प्रकार विरहवर्णन भी " बैरिन भइँ रतियाँ' और 'साँपिन भइ सेजिया ' तक सीमित न रहकर प्रकृति के खुले क्षेत्र के बीच दूर-दूर तक पहुँचता है।" 9**

इसी प्रकार राजमती के वियोग वर्णन में प्रकृति विरहोद्दीपन का कार्य करती है-

बरसाषइ धुर लूजिणइ धान,
सीला पाणी और पाका जी पान।
कनक काया घर सींचिवइ,
म्हाकउ मूर्ख राउ न जाणई।

नरपति कवि ने विरहवर्णन में राजमती को महलों की रानी की भाँति नहीं अपितु एक सामान्या ग्रामीणा की भाँति चित्रित किया है।वह पाठक की आत्मा से सहज ही तादात्म्य स्थापित कर लेती है क्योंकि मंजिलों की ऊँचाई पर पहुँचा हुआ कोई उच्चादर्श धारक व्यक्ति सीढ़ियाँ उतरकर हमारे सम धरातल पर आ मिलता है तो वह हमें सहज ही आत्मीय प्रतीत होने लगता है।राजमती जब धान व पान के पकने तथा अपने व जाटनी तथा रोझणी के रूप में जन्म की आकांक्षा करती है तो वह सहज ही पाठक के हृदय से तादात्म्य व साम्य स्थापित कर लेती है। इस प्रकार सामंती जीवन प्रेम व सौंदर्य की सक्रियता से संचालित है। डॉ० नामवर सिंह ने 'संस्कृति और सौंदर्य ' शीर्षक निबंध में आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी के उद्धरण को आधार बनाकर स्पष्ट किया है कि-**" जीवन को सुंदर ढंग से बिताने के लिए भी जीवन का एक रूप होना चाहिए। बहुत से लोग कुछ भी न करने को भोलापन समझते हैं । यह ग़लत धारणा है।सुंदर जीवन क्रियाशील होता है। क्योंकि क्रियाशीलता ही जीवन का रूप है। क्रियाशीलता को छोड़कर जीवन का सौंदर्य टिक नहीं सकता है।" 10**

राजमती का चरित्र निरूपण नाल्हकवि ने भारतीय समाज की उच्च आकांक्षा के अनुरूप आदर्श गृहिणी के रूप में चित्रित किया है। उसका पातिव्रत प्रेम पूर्णतया निष्कलंक है। बीसलदेव भारतीय समाज की पुरुष-प्रधान परंपरा का प्रतिनिधि पात्र है, वह बहुविवाह भी करता है। इसके विपरीत राजमती का प्रेम अनन्य व एकांत रूप में बीसलदेव को समर्पित है। वयस प्रसंग, साक्षात रुक्मिणी (कुटनी वृत्तांत) के वर्णन में इस तथ्य की पुष्टि होती है। हिंदी साहित्य में प्रेम के पावित्र्य की परीक्षा लेने का विधान कई ग्रंथों में पाया जाता है इस विधान का पालन रास में वयस प्रसंग में ही होता है। प्रेम व श्रृंगारवर्णन भारतीय साहित्य की सौंदर्यदृष्टि का मूल आधार तत्व है। आधुनिक आलोचक भी रसवर्णन का महत्व काव्य की कालजयी परंपरा के संरक्षण में स्वीकार करते हैं-**" रससिद्धांत ने उस सांस्कृतिक संकट की घड़ी में ब्रह्मानंद जैसा आनंद भले न दिया हो किंतु इस आश्वासन के द्वारा उसने काव्य की कालजयी परंपरा को नष्ट होने से बचा लिया, उससे तत्काल सृजन**

की किसी नई संभावना का द्वार भले ही न खुला हो किंतु पहले का जो श्रेष्ठ काव्य था वह सहृदयों के आस्वाद के द्वारा जीवित,जाग्रत और सुरक्षित रह सका।" 11

श्रृंगार रस का उद्याम प्रवाह बीसलदेव रासो में भी दिखाई पड़ता है-

तइ तउ उलग जाइ किसउ की यहु नाह।
मोडिय सीस न दीन्हीउ बाँह।
कठिन पउहर न मिल्या।
तहँ तउ अंग से अंग न मिडीइउ राउ।
जंघ जुगल जोड्या नहीं।
राउजी सेजि बिछाइ न खेरिया खेलि।

अनेक आलोचकों व साहित्येतिहासकारों ने उपर्युक्त निरूपण को देखकर ही रासो काव्यग्रंथों को प्रेम व वीर की संधिरेखा की रचना स्वीकार किया है।वे काव्यग्रंथ चरितनायक की प्रेम व वीरता की वृत्तियों का परिपूर्ण संसार रचते हैं-**" वस्तुत: रासोकाव्य चरित काव्य है और इसकी रचना का उद्देश्य प्रेम तो है लेकिन वीरता का निरूपण भी है। यह उस युग की आवश्यकता थी।"12**

बीसलदेव रासो वीर काव्य से अधिक श्रृंगारनिरूपण की रचना है।इस तथ्य को आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने मान्यता प्रदान करते हुए आचार्य शुक्ल के कथन से सहमति प्रकट की है-**" नाल्ह के ' बीसलदेव रासो' में जैसा कि होना चाहिए था, न तो उक्त वीर राजा की ऐतिहासिक चढ़ाइयों का वर्णन है, न उसके शौर्य-पराक्रम का । श्रृंगार रस की दृष्टि से विवाह और रूठकर विदेश जाने का (प्रोषितपतिका के वर्णन के लिए) मनमाना वर्णन है।" 13**

बीसलदेव रासो मूलतः श्रृंगारकाव्य है। इसमें प्रकृति संजीव रूप में उपस्थित हुई है। प्रकृति या वातावरण के प्रति प्रीतिपरक सजगता, साहित्य का अनिवार्य युगधर्म है।बीसलदेव रासो में भी संदेशरासक, प्राकृत पैंगलम्, नेमिनाथ चउपइ, पृथ्वीराज रासो की षडऋतुवर्णन तथा बारहमासा की वर्णन पद्धति का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। शिवप्रसाद सिंह ने विद्यापति के प्रकृति वर्णन का विवेचन करते हुए षडऋतु तथा बारहमासा की वर्ण्यवस्तु में श्रृंगार के दोनों पक्षों का सन्निवेश बतलाया है-**" इन रचनाओं की वस्तु तथा भावधारा का विश्लेषण करने पर मालूम होता है कि इसमें षडऋतुवर्णन मूलतः संयोग श्रृंगार का काव्य है, जबकि बारहमासा विरह या विप्रलंभ का।" 14**

बीसलदेव रासो में विरहवर्णन बारहमासा परंपरा में निबद्ध होकर आया है।रासो का बारहमासा कार्तिक मास से आरंभ होता है। प्रत्येक मास की स्थितियों के अनुकूल ही राजमती का विरह दु:ख वर्णित किया गया है।यह बारहमासा हिंदी के प्रेमकाव्य से होता हुआ लोकगीतों में आज तक दृश्यमान है। बीसलदेव रासो के विरहवर्णन में हास्यरस की भी सर्जना हुई है।जो इसे उत्कृष्टता प्रदान करता है। पंडित को संदेश लेकर जाते समय अन्न कम घी ज्यादा खाने की सलाह, उड़ीसा में बैलों की पूजा व गायों का हल में जोतना इत्यादि प्रसंगों में हास्यरस की सृष्टि विरहवर्णन को सजीवता प्रदान करती है।

राजमती का विरहवर्णन आद्यंत सहज-स्वाभाविक व गंभीर बना हुआ है।वह कहीं पर भी अतिरंजना की सृष्टि नहीं करता है।बिहारी आदि रीति कवियों की तरह चश्मे से भी न दिखने वाला , गुलाब जल को विरह आँच से बीच में ही सुखाने वाला अत्युक्तिपूर्ण व ऊहात्मक प्रसंग नाल्हकवि द्वारा सृजित नहीं किये गए हैं । राजमती का विरहवर्णन आशिक-माशूकों का प्रलापमात्र न होकर एक संयत हिंदू गृहिणी की सहज गरिमा से अलंकृत है। इसमें सात्विकता व माधुर्य की परम मनोहारी छटा विद्यमान है।

निष्कर्ष – वस्तुत: बीसलदेव रासो रासोकाव्य परंपरा में आते हुए भी मूलतः प्रेम व विरह की रचना है।इसमें कोमल-मसृण प्रेम का चित्रण व वियोग श्रृंगार की प्रधानता है।विरह के द्रवणशील मार्मिक चित्रों ने इस काव्य कृति को अपूर्व गरिमा प्रदान की है।विरह की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभूतियाँ ही इसकी प्रधान वर्ण्यवस्तु है।कवि सीधी-सरल भाषा में नारी हृदय की वेदना, विवशता तथा असहाय स्थिति का चित्रण करता चला गया है।इसका बारहमासा वर्णन भी सुंदर रसयोजना का निर्वहन करता है।यह हिंदी के प्राचीन बारहमासा काव्यों में से एक है। कतिपय विद्वान विरहवर्णन की इस बारहमासा पद्धति की प्रथम रचना का सम्मान बीसलदेव रासो को प्रदान करते हैं। उपर्युक्त सभी वैशिष्ट्य मिलकर सही अर्थों में हिंदी साहित्य की सुदीर्घ-समृद्ध परंपरा में बीसलदेव रासो को प्रेम व विरह की विशिष्ट रचना तथा नरपति कवि को

विशिष्ट उद्गाता कवि के रूप में स्थापित करते हैं।

संदर्भ सूची:-

1- हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रिया प्रकाशन, इलाहाबाद,संस्करण-2014, पृष्ठ -IV.

2- हिंदी साहित्य का इतिहास, संपादक डॉ० नगेंद्र, मयूर पेपरबैक्स,नौएडा, सैंतालीसवाँ पुनर्मुद्रण संस्करण-2005, पृष्ठ-65.

3- हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रिया प्रकाशन इलाहाबाद,संस्करण-2005.पृष्ठ-20.

4- हिंदी साहित्य व संवेदना का विकास, डॉ० रामस्वरूप चतुर्वेदी, लोकभारती प्रकाशन, ,संस्करण-2022.पृष्ठ-25.

5- हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास, डॉ० बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन,पन्द्रहवाँ संस्करण, मार्च-2022. पृष्ठ -50.

6- साहित्य और साहित्य दृष्टि, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, पेपर बैक सातवाँ संस्करण-2021.पृष्ठ-13.

7- जायसी ग्रंथावली: भूमिका, संपादक आचार्य रामचंद्र शुक्ल, सस्ता साहित्यमंडल प्रकाशन, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण - 2018,पृष्ठ-56.

8- मेघदूत, कवि कालिदास, अक्षय वट प्रकाशन, इलाहाबाद, संस्करण -2005. पृष्ठ -22.

9- त्रिवेणी, आचार्य रामचंद्र शुक्ल,लोकभारती प्रकाशन, प्रयागराज , द्वितीय संस्करण -2019, पृष्ठ -71.

10- दूसरी परम्परा की खोज, डॉ० नामवर सिंह, राजकमल पेपरबैक संस्करण, पहली आवृत्ति -2011, पृष्ठ -115.

11- कविता के नए प्रतिमान, डॉ० नामवर सिंह, राजकमल प्रकाशन,नई दिल्ली, पहला संस्करण, सातवीं आवृत्ति , 2007ई०, पृष्ठ -51.

12- अपभ्रंश भाषा और साहित्य, राजमणि शर्मा, भारतीय ज्ञानपीठ, पहला संस्करण -2015, पृष्ठ -135.

13- हिंदी साहित्य का आदिकाल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी,वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, चतुर्थ संस्करण -2021, पृष्ठ -28.

14- विद्यापति, डॉ० शिवप्रसाद सिंह, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, सोलहवाँ संस्करण -2003, पृष्ठ – 169.